4 तबला एवं पखावज वाद्यों की उत्पत्ति एवं विकास

उत्तर भारतीय संगीत के सर्वाधिक लोकप्रिय अवनद्ध वाद्यों में तबला एवं पखावज का विशिष्ट स्थान है। इन दोनों ही वाद्यों की उत्पत्ति पर विचार करने से हमें यह ज्ञात होता है कि तबला एवं पखावज — ये संज्ञाएँ बहुत प्राचीन नहीं कही जा सकतीं। तो क्या ये वाद्य आधुनिक काल में निर्मित हुए हैं? यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। प्रथमत: हम तबला वाद्य की चर्चा करते हैं

तबला शब्द अरबी भाषा की 'तब्ल' संज्ञा से आया है, जिसका अर्थ सामान्यत: 'सपाट सतह' से होता है। अरब में प्रचलित तबल सामी और अन्य अवनद्ध वाद्य लगभग नगाड़ों की तरह थे। इन वाद्यों में तबल का अर्थ सपाट सतह से ही है। जब जोड़ी वाद्य 'तबला' अठारहवीं शताब्दी के लगभग शास्त्रीय संगीत में लोकप्रिय हुआ तो इसके दोनों हिस्सों को मिलाकर 'तबला वाद्य' की संज्ञा प्रदान की गई। जैसा कि हमें विदित है, यह वाद्य दो वाद्यों का सम्मिलित स्वरूप है, जिनमें से एक को तबला या दाहिना तथा दूसरे को डग्गा या बायाँ कहा जाता है।

11153CH04

तबला वाद्य का आविष्कार

तबला वाद्य के आविष्कार से संबंधित कई मत-मतांतर विद्वानों में आरंभ से ही प्रचलित रहे हैं। तबला वाद्य के आविष्कार के संबंध में यह एक मत बहुत समय तक प्रचलित रहा कि पखावज को बीच से काटकर तबला वाद्य का निर्माण किया गया है। कालांतर में इस मत का खंडन करते हुए विद्वानों द्वारा यह तर्क दिया गया कि पखावज को बीच से काट देने पर उसका प्रत्येक भाग नीचे से, विदेशी वाद्य 'बौंगो' की तरह खुला रहेगा, जबकि तबले के दोनों भाग नीचे से बंद रहते हैं। अत: यह मत तबला वाद्य के आविष्कार के संबंध में स्वीकार नहीं किया जा सकता। कुछ विद्वानों के अनुसार, भारत में पौराणिक काल में दो भिन्न-भिन्न ध्वनि वाले नगाड़ों का वादन होता था, जिन्हें 'साम्ब' कहते थे। इनमें से एक को नर और दूसरे को मादा बताया गया है। संभव है कि तबले की जोड़ी की उत्पत्ति का आधार यही वाद्य रहा हो।

चित्र 4.1– तबला और सारंगी बजाते हुए कलाकार

© NCERT not to be republished

एक अन्य मत के अनुसार, अलाउद्दीन खिलजी के दरबारी कवि और हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य हज़रत अमीर खुसरो (1253 ई.–1325 ई. तक) को तबला वाद्य का आविष्कारक माना जाता है। लेकिन स्वयं अमीर खुसरो ने अपनी किसी पुस्तक में इस बात का उल्लेख नहीं किया है कि उन्होंने किसी वाद्य का निर्माण किया है। इस आधार पर तेरहवीं शताब्दी के अमीर खुसरो को तबला वाद्य का आविष्कारक नहीं माना जा सकता।

मुगल बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले (1719 से 1748 तक शासनकाल) के दरबार में सदारंग और अदारंग नामक दो प्रसिद्ध गायक हुए, जिन्होंने खयाल गायन शैली का प्रचार किया। खयाल गायन शैली के आविर्भाव से पहले ध्रुपद-धमार गायन शैली प्रचलित थी, जिसके साथ पखावज की संगति होती थी। पखावज वाद्य का ज़ोरदार और गंभीर नाद खयाल की संगति के अनुकूल नहीं समझा गया। आचार्य कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति ने अपनी पुस्तक *मुसलमान और भारतीय संगीत* में स्पष्ट किया है कि प्रसिद्ध गायक सदारंग और अदारंग के एक अन्य भाई, जिनका नाम खुसरो खाँ था, ने तबला सदृश्य वाद्य को शास्त्रीय संगीत में प्रचलित किया। डॉ. लालमणि मिश्र ने अपने शोध प्रबंध, *भारतीय संगीत वाद्य* में स्पष्ट किया है कि वास्तव में तबला सदृश्य वाद्य समाज में बहुत पहले से प्रचार में था, जो हुडुक्का के एक भेद के रूप में प्रचलित था। जयपुर (राजस्थान) के शासक सवाई प्रताप सिंह देव कृत *राधा गोविन्द संगीत सार* में इसका वर्णन मिलता है। डॉ. योगमाया शुक्ल और डॉ. अबान मिस्त्री ने अपने-अपने शोध प्रबंधों में भी तबला सदृश्य वाद्यों का प्रचलन बहुत पहले से भारतीय संगीत में प्रचलित होने के प्रमाण दिए हैं। डॉ. आबान ए. मिस्त्री की पुस्तक *पखावज और तबला के घराने एवं परंपराएँ* के अनुसार, महाराष्ट्र में भाजा गुफ़ा, जो संभवत: दूसरी शताब्दी ई.पू. में बनाई गई है, में एक स्त्री की मूर्ति उकेरी गई है, जो तबला-डग्गा सदृश्य जोड़ी वाद्य को अपनी कमर से बाँधकर बजा रही है। इन सभी विद्वानों के विचारों के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि तबला सदृश्य जोड़ी वाद्य, दिल्ली पर मुस्लिम शासकों के गद्दीनशीन होने के बहुत पहले से भारतीय संगीत में अपनी प्रमुख भूमिका निभाता रहा है।

चित्र 4.2–तबला और वायलिन बजाते हुए कलाकार

पखावज वाद्य का आविष्कार

मृदंग या पखावज भारतीय संगीत का एक प्रमुख अवनद्ध वाद्य है, जिसकी उत्पत्ति के संबंध में अनेक किवदंतियाँ प्रचलित हैं। किंतु ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो भरतमुनि के *नाट्यशास्त्र* में सर्वप्रथम मृदंग का वर्णन त्रिपुष्कर वाद्य के रूप में मिलता है। वैदिक साहित्य में दुन्दुभी, भूदुन्दुभी

चित्र 4.3– महिला तबला वादक — अनुराधा पाल

जैसे अवनद्ध वाद्यों का तो उल्लेख मिलता है, किंतु कहीं भी मृदंग शब्द का उल्लेख नहीं मिलता। इससे प्रतीत होता है कि वैदिक काल में मृदंग का आविष्कार नहीं हुआ होगा, जबकि रामायण और महाभारत काल में वीणा और मृदंग का प्रचार था। तत्कालीन समाज के धार्मिक तथा सामाजिक उत्सवों का जो वर्णन मिलता है, उससे ज्ञात होता है कि उन दिनों मृदंग काफ़ी प्रचलित था। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि वैदिक काल के बाद और रामायण काल के बहुत वर्ष पूर्व मृदंग का प्रयोग आरंभ हो गया होगा।

भरतमुनि द्वारा रचित *नाट्यशास्त्र* में वर्णित त्रिपुष्कर वाद्य के तीन भाग थे— आंकिक, ऊर्ध्वक और आलिंग्य। दो ऊर्ध्वाधर खड़े भागों को ऊर्ध्वक और आलिंग्य, जबकि लेटे हुए भाग को आंकिक कहा जाता था, जो अंक अर्थात् गोद में रखकर बजाया जाता था। सातवीं शताब्दी के बाद धीरे-धीरे त्रिपुष्कर की इस आकृति में परिवर्तन होता गया और बारहवीं–तेरहवीं शताब्दी तक वह पूरी तरह परिवर्तित हो चुका था। उससे ऊर्ध्वक और आलिंग्य हिस्से हट गए और आंकिक जो कि अंक में रखकर बजाया जाता था, वही भाग बच गया, जो आगे चलकर मृदंग के नाम से प्रचलित हुआ। वर्तमान में प्रचलित उत्तर भारत का मृदंग या पखावज तथा दक्षिण भारत का मृदंगम भरतकालीन त्रिपुष्कर वाद्य का ही एक परिष्कृत भाग है।

ऐसा अनुमान है कि भरत से लेकर शारंगदेव के समय तक जो 'जाति' और 'प्रबंध' गायन किसी न किसी रूप में प्रचलित था, उसमें मृदंग के ही विभिन्न रूपों का प्रयोग होता था। मध्यकालीन ध्रुपद गायन शैली में मृदंग का ही प्रयोग संगति के लिए किया जाता था, लेकिन मृदंग के स्थान पर पखावज शब्द का प्रयोग मध्ययुग से आरंभ हुआ। अनुमान किया जाता है कि मध्ययुग में ध्रुपद-धमार गायकी की संगति के लिए भरतकालीन मृदंग की आकृति एवं नाद में कुछ परिवर्तन हुआ होगा, जिसके फलस्वरूप वह पखावज कहलाने लगा होगा। यह परिवर्तन ध्रुपद-धमार गायकी के अनुरूप संगत की क्रियात्मक दृष्टि को लक्ष्य में रखकर, गंभीर नाद एवं रस उत्पत्ति हेतु हुआ होगा। अधिकांश विद्वान मानते हैं कि पखावज भरतकालीन मृदंग का ही परिष्कृत रूप है। भाषा की दृष्टि से मृदंग शास्त्रीय शब्द है और पखावज लोक व्यवहार में प्रयुक्त शब्द।

कुछ विद्वान मानते हैं कि पखावज शब्द 'पक्ष' वाद्य से बना है। यहाँ पर पक्ष का तात्पर्य भुजाओं से है। ऐसा माना जाता है कि दोनों भुजाओं के माध्यम से जिस वाद्य के दोनों मुखों पर बजाया जाता है,'पक्ष वाद्य' कहलाता होगा। कालांतर में बोलचाल की भाषा में पक्ष का 'पख' और वाद्य का 'बाज' हो गया होगा। इस प्रकार पखावज प्रचार में आया होगा। गुजरात, महाराष्ट्र और बंगाल में आज भी इस पखावज को 'पखवाज' कहते हैं।

आंकिक का नाम पक्षावज और उसके बाद पखावज के रूप में प्रचलित हुआ।

चित्र 4.4–आंकिक द्विमुखी अवनद्ध वाद्य आकृति

वर्तमान में हुए शोध कार्यों से स्पष्ट है कि भरतमुनि के *नाट्यशास्त्र* में वर्णित त्रिपुष्कर वाद्य के ऊर्ध्वक और आलिंग्य भाग से वर्तमान के तबला जोड़ी का तथा आंकिक से उत्तर भारतीय वाद्य मृदंग या पखावज तथा दक्षिण भारतीय वाद्य मृदंगम् का विकास हुआ है।

दो हज़ार वर्षों में आवश्यकतानुसार इन दोनों वाद्यों में अनेक परिवर्तन हुए हैं। भरतकाल में इन वाद्यों के खोल मिट्टी से बनाए जाने का उल्लेख है। बाद में यह लकड़ी (काष्ठ) से निर्मित किए जाने लगे और अब आलिंग्य, जो वर्तमान डग्गा है, का शरीर पीतल, ताँबा अथवा मिट्टी से भी बनाया जाने लगा है।

चित्र 4.5–ऊर्ध्वक आलिंग्य एकमुखी

चित्र 4.6–ऊर्ध्वक एकमुखी आकृति

पंजाब प्रांत में तबले के बाँये को धामा कहते हैं, जिसमें आज भी आटा लगाने की परंपरा देखी जा सकती है। इससे यह सिद्ध होता है कि तबला और पखावज (पक्षावज) सदृश्य वाद्य, भारत में पहले से प्रचलित रहे हैं और परिवर्तनों के साथ ये आज भी न केवल प्रचलित हैं, अपितु अत्यंत लोकप्रिय भी हैं।

not to be republished

मनुष्य का अभिनव चिंतन

भरतकालीन मृदंग को इच्छित स्वरों में मिलाने के लिए मृत्तिका (मिट्टी) लेपन का प्रावधान किया गया था। मिट्टी के अतिरिक्त या मिट्टी की अनुपलब्धता की स्थिति में गुड़ और चावल का लेप प्रयुक्त करने की बात कही गई है। बहुत बाद में जब लौहचूर्ण उपलब्ध हो गया तब इसका प्रयोग स्याही के लिए तबला और पखावज, दोनों ही वाद्यों में किया जाने लगा। पखावज के दाहिने हिस्से में और तबले पर इस लौह चूर्ण को आटा अथवा चावल की माढ़ में मिलाकर लेपन करने से दोनों ही वाद्यों की नादात्मकता में बहुत ही सकारात्मक परिवर्तन आए हैं।

पखावज द्विमुखी अवनद्ध वाद्य है, परंतु इसका शरीर एक ही है। अतएव इसके दोनों मुखों पर लगाई जाने वाली पूड़ी एक ही रस्सी अथवा बद्धी से कसी जाती है। इसके दाहिने मुख पर तबला सदृश्य स्याही का लेपन किया जाता है। यदि इस वाद्य के बाँये मुख पर भी लौहचूर्ण युक्त स्याही लगाई जाए तो दोनों मुखों को संवादी रूप में इच्छित स्वरों में मिलाना संभव नहीं होगा। अत: विद्वानों ने विचारपूर्वक तय किया कि बाँये मुख पर गेहूँ का आटा सानकर उसकी एक पुलिका लगाई जाए। आटे की मात्रा को कम या ज़्यादा कर दाहिने के संवादी स्वर को प्राप्त किया जाता है। यह आटे की पुलिका कार्यक्रम के पहले लगाई जाती है और कार्यक्रम समाप्ति के बाद उसे निकाल दिया जाता है।

अभ्यास

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. तबला वाद्य किस शताब्दी में लोकप्रिय हुआ?
   (क) पंद्रहवीं शताब्दी (ख) सोलहवीं शताब्दी
   (ग) सत्रहवीं शताब्दी (घ) अठारहवीं शताब्दी
2. प्रसिद्ध गायक सदारंग और अदारंग के भाई का नाम क्या था?
   (क) अमीर खुसरो (ख) भरत
   (ग) खुसरो खाँ (घ) विलायत हुसैन
3. *भारतीय संगीत वाद्य* पुस्तक के लेखक कौन हैं?
   (क) भरतमुनि (ख) आचार्य बृहस्पति
   (ग) लालमणि मिश्र (घ) प्रेमलता शर्मा
4. भरतमुनि द्वारा रचित ग्रंथ कौन-सा है?
   (क) *संगीत रत्नाकर* (ख) *बृहद्देशी*
   (ग) *नाट्यशास्त्र* (घ) *दत्तिलम*
5. पखावज को प्राचीन काल में किस नाम से जाना जाता था?
   (क) आलिंग्य (ख) आंकिक
   (ग) ऊर्ध्वक (घ) एकमुखी

© NCERT not to be republished

6. भरतकाल में वाद्यों के खोल किससे बनाए जाते थे?
   (क) लकड़ी (ख) मिट्टी
   (ग) काँसा (घ) ताँबा
7. पखावज के बायें मुख पर किसका लेप लगाया जाता है?
   (क) लौह चूर्ण (ख) स्याही
   (ग) गीला आटा (घ) इनमें से कोई नहीं
8. मृदंग वाद्य किस श्रेणी के अंतर्गत आता है?
   (क) तत् (ख) घन (ग) सुषिर (घ) अवनद्ध
9. आबान ए. मिस्त्री किस वाद्य की विशेषज्ञ रही थी?
   (क) तबला (ख) पखावज (ग) ढोलक (घ) हारमोनियम
10. *राधा गोविन्द संगीत सार* के लेखक कौन थे?
   (क) योगमाया शुक्ल (ख) सवाई प्रताप सिंह
   (ग) जयदेव (घ) तानसेन

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. तबला शब्द किस भाषा और संज्ञा से लिया गया है?
2. भरतमुनि ने किस ग्रंथ की रचना की है?
3. पंजाब प्रांत में तबले के बायें को क्या कहा जाता है?
4. तबला तथा पखावज वाद्य किस श्रेणी के अंतर्गत आते हैं?
5. अमीर खुसरो किसके दरबारी कवि थे?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. शास्त्रीय संगीत में तबला वाद्य की भूमिका को समझाइए।
2. आंकिक शब्द से आप क्या समझते हैं? परिभाषित कीजिए।
3. तबला एवं पखावज के विभिन्न अंगों के नाम लिखिए।
4. क्या आपने कभी कोई त्रिभुजी वाद्य देखा है? उसका सचित्र वर्णन कीजिए।
5. कुछ प्रसिद्ध तबला वादकों के विषय में विस्तारपूर्वक लिखिए।
6. तबला एवं पखावज वाद्य की समानताओं और असमानताओं पर प्रकाश डालिए?

© NCERT not to be republished

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. भरत का काल लगभग .... शताब्दी माना जाता है।
2. पखावज के दाहिने मुख पर .... का लेपन किया जाता है।
3. .... ग्रंथ में मृदंग का उल्लेख प्राप्त होता है।
4. आंकिक को वर्तमान में .... नाम से जाना जाता है।
5. प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो का समयकाल .... रहा।

सुमेलित कीजिए

(क) कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति	1. *पखावज और तबला के घराने एवं परंपराएँ*
(ख) आबान ए. मिस्त्री	2. *नाट्यशास्त्र*
(ग) लालमणि मिश्र	3. *मुसलमान और भारतीय संगीत*
(घ) सवाई प्रताप सिंह देव	4. *भारतीय संगीत वाद्य*
(ड़) भरतमुनि	5. *राधा गोविन्द संगीत सार*

विद्यार्थियों हेतु गतिविधि

1. अपने क्षेत्र के किसी ऐतिहासिक स्मारक को देखने जाइए। वहाँ दीवारों पर बने चित्र, मूर्तिकला और शिल्पकला को अच्छी तरह देखें। क्या कोई वाद्य यंत्र बजाते हुए दिख रहा है? चित्र किसी अवनद्ध वाद्य, सुषिर वाद्य, तंतु वाद्य का हो सकता है। उस वाद्य का छायाचित्र लेकर विवरण दीजिए तथा उपरोक्त बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए एक परियोजना तैयार कीजिए।
2. पखावज या तबला वादक से बातचीत कीजिए और पूछिए कि किस तरह से वे अपने वाद्य की देख-रेख करते हैं। आज के युग में उनकी क्या समस्याएँ हैं?
3. ऊर्ध्वक अवनद्ध वाद्य, आलिंग्य अवनद्ध वाद्य, आंकिक द्विमुखी अवनद्ध वाद्य के चित्र बनाइए।
4. ग्रामीण क्षेत्रों में बजाए जाने वाले कुछ अवनद्ध वाद्यों के चित्र बनाइए एवं उनके नाम बताइए। किस परिवार के लोग इसे बजाते हैं?
5. क्या अवनद्ध वाद्य से निकली गूँज विज्ञान से संबंधित है? बताइए कैसे?

शोध एवं विचार

1. पखावज के पूड़ी पर आटा लगाने का कारण बताइए।
2. तबले की पूड़ी पर लौह चूर्ण लगाने के कारण बताइए।

© NCERT not to be republished

कुदऊ सिंह

महान पखावज वादक कुदऊ सिंह की जन्म एवं मृत्यु तिथि (एक अनुमान के अनुसार) क्रमश: 1812 एवं 1907 है। बचपन में ही माता-पिता के स्नेह से वंचित हो चुके कुदऊ सिंह को पखावज की शिक्षा मथुरा के प्रसिद्ध पखावज गुरु भवानी दीन से मिली, जिन्हें कहीं-कहीं भवानी सिंह या भवानी दास के नाम से भी जाना जाता है। सन् 1847 में, अवध के अंतिम नवाब वाजिद अली शाह ने उनके पखावज वादन पर प्रसन्न होकर इन्हें 'सदा कुंवर' (कुंवर दास) की उपाधि प्रदान की थी। अपने समकालीन प्रसिद्ध पखावजी जोध सिंह को एक प्रतियोगिता में परास्त कर इन्होंने एक लाख रूपये का पुरस्कार जीता था। रीवा के राजा ने उनके एक परन पर प्रसन्न होकर, उन्हें पुरस्कार स्वरूप सवा लाख रूपया दिया था।

कुदऊ सिंह को रीवा, रामपुर, झांसी, बांदा, कवर्धा और दतिया आदि के राजाओं का संरक्षण प्राप्त था। दतिया के राजा भवानी सिंह ने ही इन्हें 'सिंह' की उपाधि दी थी। कुदऊ सिंह ने गुरु द्वारा प्राप्त पखावज वादन की शिक्षा में, बहुत कुछ अपनी ओर से जोड़कर अपनी एक नवीन शैली विकसित की और स्वयं को मृदंग सम्राट के रूप में स्थापित किया। इनकी वादन शैली ओजपूर्ण और गंभीर थी, जिसमें हथेली का प्रयोग अधिक होता है। ज़ोरदार, क्लिष्ट और एक-दूसरे से गुँथे हुए वर्णों से निर्मित लंबी-लंबी परन इस परंपरा में प्रचलित हैं। साहित्य की दृष्टि से भी ये परनें उच्चकोटि की होती हैं। धड़गण, धड़न्न, तड़न्न, धिलांग, धुमकिटतक, क्रिधित, तक्काथुंग जैसे बोलों का इस परंपरा में अधिक प्रयोग होता है। कुदऊ सिंह परंपरा का बाज खुला बाज है और इसका प्रचार-प्रसार लगभग समस्त भारत में है।

कुदऊ सिंह अनेक अविश्वसनीय जनश्रुतियों के केंद्र थे। ये मूलत: कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके वंशज अपना उपनाम शर्मा लिखते हैं। कहते हैं कि अपनी पुत्री के विवाह में दामाद काशी प्रसाद को चौदह सौ परन इन्होंने उपहार स्वरूप दिए थे, जिन्हें पुत्री धन समझकर फिर कभी नहीं बजाया। कुदऊ सिंह ने समस्त भारत के सैकड़ों लोगों को पखावज वादन की शिक्षा दी। इनके प्रमुख शिष्यों में, इनके छोटे भाई राम सिंह, भतीजे जानकी प्रसाद और दामाद काशी प्रसाद का नाम आदर से लिया जाता है। जानकी प्रसाद के पुत्र गया प्रसाद और पौत्र पद्मश्री पंडित अयोध्या प्रसाद श्रेष्ठ पखावजी हुए। पंडित अयोध्या प्रसाद के सबसे छोटे पुत्र पंडित रामजी लाल शर्मा वर्तमान में इस परंपरा का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

© NCERT not to be republished

नाट्यशास्त्र में अवनद्ध वाद्य

भरतमुनि द्वारा रचित *नाट्यशास्त्र*, जो वस्तुत: नाट्यकला से संबंधित ग्रंथ है, में तत्कालीन संगीत में प्रयुक्त होने वाले अनेक अवनद्ध वाद्यों का वर्णन किया गया है। भरत का काल (ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से दूसरी शताब्दी ईसवी के बीच) लगभग दो हज़ार वर्ष पुराना माना जाता है।

भरत ने अवनद्ध वाद्यों को पुष्कर वाद्य कहा है। भरत के अनुसार, सौ से भी अधिक अवनद्ध वाद्य तत्कालीन संगीत में प्रचलित थे। इच्छित स्वरों में मिलाए जा सकने योग्य अवनद्ध वाद्यों को अंग तथा अन्य को प्रत्यंग वाद्यों के रूप में वर्णित किया गया है। *नाट्यशास्त्र* के 34वें अध्याय के अंतर्गत तत्कालीन संगीत में प्रचलित अनेक अवनद्ध वाद्यों का विस्तृत वर्णन हमें प्राप्त होता है।

भरत द्वारा दी गई एक कथा के अनुसार, स्वाति नाम के ऋषि वर्षाकाल में जब तालाब अर्थात् पुष्कर में स्नान करने गए थे तो तालाब में उगे कमल के विभिन्न आकार के पत्तों पर पड़ने वाली वर्षा की बूँदों से उत्पन्न होने वाली विभिन्न ध्वनियों को सुनकर, उन्हें अवनद्ध वाद्यों की निर्मिति का विचार आया। विश्वकर्मा की सहायता से ऐसे वाद्यों का निर्माण किया गया। पुष्कर (तालाब) से प्राप्त कल्पना के कारण इन्हें पुष्कर वाद्य कहा गया।

मृदंग, पणव, पटह, दर्दुर तथा झल्लरी जैसे अवनद्ध वाद्यों की बनावट, वाद्य निर्माण में लगने वाली सामग्री, इच्छित स्वरों में मिलाए जाने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली मिट्टी की विशेषताएँ, बजाए जाने वाले विभिन्न वर्णों तथा उनके संयोग से बनने वाले विभिन्न वर्ण समूह, उनकी वादन विधि— इन सबका जिस विस्तार तथा गहनता से विचार किया गया है, उससे उस काल में अवनद्ध वाद्यों की उत्कृष्टता और महत्व का पता चलता है।

भरत ने सर्वप्रथम 'मृदंग' वाद्य का वर्णन किया है। जो वस्तुत: 'तीन' वाद्यों का सम्मिलित रूप है, जिन्हें क्रमश: आंकिक, ऊर्ध्वक और आलिंग्य कहा गया है। आंकिक, वर्तमान मृदंग (पखावज) सदृश्य द्विमुखी वाद्य था, जबकि ऊर्ध्वक और आलिंग्य एकमुखी ऊर्ध्वकार वाद्य थे, जैसे कि, वर्तमान समय में तबला-डग्गा। भरत के परवर्ती काल में मृदंग का आंकिक रूप ही प्रचार में रहा, जबकि ऊर्ध्वक और आलिंग्य 'जोड़ी वाद्य' के रूप में, लोक में विभिन्न आकार-प्रकारों में प्रचलित रहे। यूँ देखा जाए तो प्रथम अवनद्ध वाद्य दुन्दुभी ही था, आगे चलकर इसी से एकमुखी वाद्यों की जोड़ी प्रचलन में आई होगी, जिन्हें ऊर्ध्वक और आलिंग्य के रूप में जाना गया होगा। आंकिक सदृश्य वाद्य निश्चय ही इसके पश्चात् निर्मित हुआ होगा। भरत ने जिसे मृदंग कहा है, वह वस्तुत: आंकिक, ऊर्ध्वक और आंलिग्य का सम्मिलित रूप है। अवश्य ही यह एक उन्नत वाद्य था, क्योंकि इसे इच्छित स्वरों में मिलाया जा सकता था। मृदंग के तीनों हिस्सों के सम्मिलित रूप को 'त्रिपुष्कर' संज्ञा प्रदान की गई है। वहीं,

चित्र 4.7–दक्षिण भारत का अवनद्ध वाद्य — तविल

मृदंग, पणव और दर्दुर को सम्मिलित रूप से ‘पुष्करत्रयी’ कहा गया है। स्पष्ट है कि ये तीनों वाद्य तत्कालीन ‘मार्ग संगीत’ में अत्यधिक महत्वपूर्ण थे।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लगभग दो हज़ार वर्ष पूर्व भी अवनद्ध वाद्यों का संगीत में न केवल महत्वपूर्ण स्थान था, अपितु उसका एक विस्तृत और अनुभवसिद्ध शास्त्र भी था।

पणव— पणव वाद्य को भी अंग वाद्य के रूप में ही कहा गया है। मध्यकाल का हुडुक्का वाद्य ही थोड़े बहुत अंतर के साथ प्राचीन पणव था। इस द्विमुखी डमरू आकृति के वाद्य की लम्बाई लगभग डेढ़ हाथ (दो से ढाई फ़ुट) होती थी जिसके दोनों मुखों पर चमड़ा एक ही डोरी से कसा रहता था। इसे बजाते समय इसके मुख पर हाथ या डण्डी से आघात कर रस्सी को दबाकर या ढीला करते हुए विभिन्न स्वरों की उत्पत्ति की जाती थी।

पटह— वर्तमान काल के ढोलक से इसका रूप साम्य समझना चाहिए। यह अत्यंत लोकप्रिय वाद्य था। तत्कालीन शास्त्रीय संगीत के साथ ही लोक संगीत में इसका प्रचलन अत्यधिक था। इसे प्रत्संग वाद्य ही माना गया है, क्योंकि स्याही (मिट्टी लेपन) का प्रयोग नहीं होने से इसमें ‘आंस’ कम होती होगी और बहुत सटीक रूप में इसे इच्छित स्वर में मिलाना तब संभव नहीं रहा होगा।

दर्दुर— दर्दुर अंग वाद्य के रूप में प्रसिद्ध था। ‘घट’ आकार के इस वाद्य के मुँह पर बाँस की (वृत्ताकार) रिंग बनाकर उसमें कसकर इसे रस्सी की सहायता से कस दिया जाता था। इसे दोनों हाथों के आघात से बजाया जाता है। परवर्ती काल में इसमें लगाए जाने वाले चमड़े की पूड़ी का प्रयोग समाप्त हो गया और मात्र घट के रूप में यह उत्तर भारत में घड़े (मटके) के रूप में तथा कर्नाटक संगीत में घटम् के रूप में प्रचलित हुआ। कर्नाटक संगीत में मृदंग के समक्ष ही इसका महत्व माना जाता है।

झल्लरी— यह एक प्रत्यंग वाद्य है। इसका जो रूप भरत ने कहा है, उस आधार पर हम कह सकते हैं कि यह वर्तमान डफ या खंजरी सदृश्य वाद्य रहा होगा। इसमें लगे चमड़े को एक हाथ की अँगुलियों से दबाकर दाहिने हाथ से आघात कर विभिन्न प्रकार के नाद वैविध्य का आनंद लिया जा सकता है। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में तो इसका प्रयोग नहीं होता, किंतु कर्नाटक संगीत में गायन या स्वर वाद्य की संगति में इसका बहुतायत में प्रयोग होता है।

उपरोक्त के अतिरिक्त झंझा, दुन्दुभी, डिंडिम, भेरी आदि अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख भी प्रत्यंग वाद्यों के रूप में किया गया है। एक स्वर वाद्य को भी भेरी कहा गया है, किंतु यहाँ उल्लिखित भेरी वाद्य अवनद्ध वाद्य ही है।

चित्र 4.8– तबला बनाते हुए कारीगर का कौशल

© NCERT not to be republished